ISSN 2229-3388

अनुसन्धानवल्लरी

ज्ञानभूमिसमुद्भूता शास्त्रकल्पतरुश्रिता ।
पलाशैः प्रातिभैर्भव्या सानुसन्धानवल्लरी ।।

श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिवेदमीमांसानुसन्धानकेन्द्रम्
वाराणसी

एकादशाङ्कः

अनुसन्धानवल्लरी
(मूल्याङ्कित-शोधपत्रिका)
Anusandhanvallari
(Refereed Research Journal)
ISSN : 2229-3388
❐
प्रकाशकः
श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिवेदमीमांसानुसन्धानकेन्द्रम्
बी. ४/७-ए, हनुमानघाट, वाराणसी-२२१००१
e-mail : psvmkendra@gmail.com
❐
एकादशाङ्कः (आचार्यसीतारामशास्त्रि-स्मृत्यर्पितः संयुक्ताङ्कः)
प्रकाशनवर्षम् : वि.सं. २०७३-२०७४ (२०१६-२०१७ ई.)
मूल्यम् : शतं रूप्यकाणि
❐

निर्णायकमण्डलम्
प्रो. सन्निधानं सुदर्शनशर्मा
पूर्वकुलपतिः श्रीवेङ्कटेश्वरवेदविश्वविद्यालयस्य, तिरुपतिः
प्रो. युगलकिशोरमिश्रः
पूर्वकुलपतिः जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, जयपुरम्
प्रो. दीपककुमारशर्मा
कुलपतिः कुमारभास्करवर्मा-संस्कृतप्राच्यविद्याविश्वविद्यालयस्य, नलबाडी (असम)
प्रो. हरिहरत्रिवेदी
वेदवेदाङ्गसङ्कायाध्यक्षः श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृतविद्यापीठस्य, नवदेहली
प्रो. देवेन्द्रनाथपाण्डेयः
पूर्वसङ्कायाध्यक्षः श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, वेरावल (गुजरात)
प्रो. रवीन्द्रनाथभट्टाचार्यः
प्राक्तनसंस्कृतविभागाध्यक्षः कलकत्ताविश्वविद्यालयस्य
सम्पादकीयसङ्कल्पना
डॉ. चन्द्रकान्ता राय
संस्कृतविभागाध्यक्षा आर्यमहिलास्नातकोत्तरमहाविद्यालयस्य, वाराणसी
❐

मुद्रकः
श्रीजी प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

पृ.सं.

स्वस्त्ययनमतम् iii

प्रो. पीयूषकान्तदीक्षितः

कुलपतिः, उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, हरिद्वारम्

सम्पादकीयम् iv

Sanskrit Theatre in Varanasi and Prayāga १

Prof. Yugal Kishor Mishra

उपनिषदों में सत्-चित्-आनन्दस्वरूप-विमर्श ९

डॉ. चन्द्रकान्ता राय

गुणनिरूपण-चरक, सुश्रुत एवं वैशेषिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में १७

डॉ. मंजू कुमारी

वाधूलश्रौतसूत्र का विषयवैशिष्ट्य २८

डॉ. शिल्पा सिंह

आगमप्रमाणस्य स्वरूपं तदुपादेयता च (वेदान्तपरिभाषायाः विशेषसन्दर्भे) ३६

डॉ. सिद्धिदात्री भारद्वाजः

अभिज्ञानशाकुन्तल की शकुन्तला एवम् उत्तररामचरित की सीता में साम्य ४४

डॉ. प्रदीप कुमार

माघकाव्य में आयुर्वेद-चिकित्सा ५३

डॉ. पल्लवी त्रिवेदी

दर्शनशास्त्र की प्रासङ्गिकता ६३

सुजाता पटेल

कादम्बर्याः वैशिष्ट्यम् ६९

डॉ. विमलेन्दु कुमार त्रिपाठी

ऋग्वेद के आलोक में संस्कृति का शाश्वत स्वरूप ७२

अजय कुमार यादव

किरातार्जुनीयम् में चित्रित प्राकृतिक सुषमा ८०

लक्ष्मी सिंह

गुणनिरूपण–चरक, सुश्रुत एवं वैशेषिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० मंजू कुमारी*

आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों का पल्लवन दार्शनिक विचारधाराओं के आधार पर हुआ है। चरक, सुश्रुत एवं भारतीय दर्शन में 'गुण' का समुचित विवेचन उपलब्ध होता है। चरक (सू० १/४९) ने ४१ गुणों की मान्यता व्यक्त की है। चरक के संस्कृत टीकाकार योगीन्द्रनाथ सेन ने पंच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषयों के साथ छठें मन के अर्थ (चिन्त्य, विचार्य आदि) को भी ग्रहण किया है। इस प्रकार मनोऽर्थ को लेकर आचार्य सेन के अनुसार गुणों की संख्या ४२ होती है।[१] चरक ने शारीरस्थान के प्रथम अध्याय में पंचमहाभूतों के पंचगुणों एवं आत्मा (पुरुष) के गुणों का वर्णन किया है। सुश्रुत संहिता के सूत्रस्थान (४६/५१८-५२९) में २० गुणों का निरूपण मिलता है। इसी संहिता के शारीरस्थान (१/३-१०) के सृष्टिनिरूपण–प्रसंग में सांख्य सिद्धान्त के आधार पर सत्त्व, रजस्, तमस्–तीनों गुणों का वर्णन मिलता है। अष्टांगसंग्रह[२] में सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों गुणों को महागुण की संज्ञा दी गई है। ये महागुण त्रिगुणात्मिका प्रकृति और उसके समस्त विकारों में पाये जाते हैं। भारतीय दर्शन में सांख्य और वैशेषिक दर्शन ने गुणों का विस्तृत विवेचन किया है। सांख्य के अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है अर्थात् वह सत्त्व, रजस् तथा तमस् रूप ही है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद[३] ने सत्रह गुणों का उल्लेख किया है, जिनमें प्रशस्तपाद ने सात गुण और जोड़कर गुणों की संख्या चौबीस कर दी है।[४]

इस शोधपत्र में चरक, सुश्रुत एवं वैशेषिक दर्शन में निहित गुणों के स्वरूप का विवेचन करते हुए उनका तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है।

आयुर्वेदोक्त गुण और उनके भेद

चरकसंहिता (सू० १/५१) में गुण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः अर्थात् जो द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला (द्रव्याश्रयी) हो, चेष्टारहित हो और किसी गुण की उत्पत्ति में कारणभूत हो, उसे गुण कहते हैं। सुश्रुत ने गुण की कोई प्रत्यक्ष परिभाषा नहीं की है। उनके विचार से वीर्यसंज्ञक आठ गुण ही गुण हैं। ये द्रव्याश्रित ही होते हैं, रसों में नहीं क्योंकि गुण निर्गुण ही होते हैं। इसमें समवायाधेता तथा निष्क्रियता का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। द्रव्यों के कर्म के द्वारा ही गुणों का अनुमान किया जा सकता है।[५]

---

*असिस्टेंट प्रोफेसर, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

 ISSN 2229-3388

चरकसंहिता में कई स्थानों पर गुणों की संख्या का वर्णन आया है। सूत्रस्थान (१/४९) में चरक ने गुणों की संख्या के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है-सार्था गुर्वादयो बुद्धिः प्रयत्नान्ताः परादयः। गुणप्रोक्ताः।। अर्थात् अर्थ के साथ गुरु आदि, बुद्धि, जिसके अन्त में प्रयत्न है, पर आदि...इन्हें गुण कहा जाता है। सूत्रस्थान (२५/३६) में आहार में विद्यमान बीस गुणों का उल्लेख किया गया है। शारीरस्थान (६/१०) में भी इन्हीं बीस गुणों की गणना की गई है। पुनः सूत्रस्थान (२६/३०) में द्रव्यों के प्रसंग में रसनिरूपण से सम्बद्ध दस गुणों की विवेचना की गई है। यदि हम चरक सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय (४९) में वर्णित सार्था....इस सूत्र की व्याख्यानुसार गणना करें तो गुणों की संख्या को इस प्रकार से समझा जा सकता है-

सार्था—अर्थात् अर्थ के साथ। इसमें पांच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय (अर्थ) आते हैं। ये क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध हैं।

गुर्वादि—अर्थात् गुरु आदि। आहार के २० गुण हैं- गुरु, लघु, मन्द, तीक्ष्ण, हिम, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष; श्लक्ष्ण, खर, सान्द्र, द्रव, मृदु, कठिन, स्थिर, सर, सूक्ष्म, स्थूल, विशद और पिच्छिल।

बुद्धि आदि—ये आत्मा के गुण हैं। इनकी संख्या छः है- बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न।

परादि—ये द्रव्य के प्रसंग में कहे गये गुण हैं। इनकी संख्या दस है- परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यासी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध- ये पाँच गुण महाभूतों के विशिष्ट गुण होने से भौतिक या विशिष्ट गुण के नाम से अभिहित होते हैं। इनका सम्बन्ध साक्षात् इन्द्रियों से है, इसलिए इन्हें इन्द्रियार्थ कहा गया है। आयुर्वेदीय संहिताओं में इनका वर्णन इस प्रकार है—

शब्द—चरक (शा० १/२८) ने शब्द को आकाश महाभूत का नैसर्गिक गुण माना है। इसका ग्रहण श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा होता है (सू० ८/११)। आतुर-परीक्षा में हृदय, फुफ्फुस, उदर एवम् अन्य अंगों से अनेक वैकृत शब्द सुनने को मिलते हैं, जिनके आधार पर रोग का निदान किया जाता है।

स्पर्श—चरक (शा० १/२८) के अनुसार स्पर्श वायु महाभूत का नैसर्गिक गुण है और यह स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है (सू० ८/११)। ज्वर एवं शोक में स्पर्श द्वारा ही निदान होता है (सू० ११/३८)।

रूप—चरक (शा० १/२८) ने तेज या अग्नि महाभूत का नैसर्गिक गुण रूप को माना है जो कि चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है (सू० ८/११)। सुश्रुत (सू० १०/५)

के अनुसार आतुर की परीक्षा में शरीर की स्थूलता, कृशता, आयु के लक्षण, बल, वर्ण आदि का ज्ञान चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा होता है।

रस—चरक (शा० १/२८) ने रस को जल महाभूत का नैसर्गिक गुण माना है, जिसका ग्रहण रसनेन्द्रिय द्वारा किया जाता है। सुश्रुत (सू० १०/५) के अनुसार प्रमेह के व्यक्तियों में मूत्र की मधुरता की परीक्षा करके ही उक्त रोग का निदान किया जाता है।

गन्ध—चरक (शा० १/२८) के अनुसार गन्ध पृथ्वी महाभूत का नैसर्गिक गुण है जो कि घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है। सुश्रुत (सू० १०/५) के अनुसार अशिष्ट लिंग (मृत्युख्यापक चिह्न) में व्रणों एवं अव्रणों में जो गन्ध विशेष है, उनकी परीक्षा घ्राणेन्द्रिय द्वारा की जाती है।

गुरु—सुश्रुत (सू० ४६/५२२) के अनुसार गुरु गुण वाला द्रव्य साद (अङ्ग भारी, ग्लानि), उपलेप (मलों की वृद्धि और चिकनाहट), बल, कफ तथा शरीर की पुष्टि करने वाला (बृंहण) एवं चिरपाकी (देर से पचनेवाला) होता है। चरक (सू० २५/३६) ने आहार के संघटक के रूप में गुरु गुण का नामत: उल्लेख तो किया है, परन्तु उसकी परिभाषा कहीं भी व्यक्त नहीं की है।

लघु—सुश्रुत (सू० ४६/५२३) के अनुसार जिस गुण के कारण शरीर पतला हो, कफनाशक द्रव्य शीघ्र पच जाय एवं व्रणरोपण (भरना) हो, द्रव्यों में स्थित उस गुण को लघु गुण कहते हैं। चरक ने केवल लघु का नाम लिया है।

शीत—चरक (सू० १/५९-६१) ने इसे वायु और श्लेष्मा का एक घटक माना है। सुश्रुत (सू० ४६/५१९) के अनुसार जो (बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग से शरीर में) प्रसन्नता और स्तंभन (गति में अवरोध) उत्पन्न करे तथा मूर्च्छा, तृषा, स्वेद एवं दाह का शमन करे, उसे 'शीत' गुण कहते हैं।

उष्ण—चरक (सू० १/६०) ने उष्ण का पित्त के घटक के रूप में तथा स्वेद द्रव्यों के गुण के रूप में उल्लेख किया है। सुश्रुत (सू०४६/५१५) के अनुसार जो शीत गुण के विपरीत कार्य करने वाला अर्थात् कष्टकर, स्वेद, मूर्च्छा, तृष्णा और उष्णताजनक हो तथा पाचनकर्म (कच्चे व्रणों को पका देने वाला) करने वाला हो उसे 'उष्ण' गुण कहते हैं।

स्नेह—चरक (सू० १/६०-६१) ने पित्त एवं श्लेष्मा के गुण के रूप में स्निग्ध का वर्णन किया है। सुश्रुत (सू० ४६/५१६) के अनुसार जिस गुण से शरीर में बल, वर्ण, कान्ति एवं स्निग्धता उत्पन्न हो वह 'स्नेह' गुण है।

रूक्ष—चरक (सू० १/५९) के अनुसार वात का प्रमुख गुण रूक्ष है। सुश्रुत (सू० ४६/५१६) ने इसे स्नेह के विपरीत अर्थात् शरीर का शोषण करने वाला, रूखा तथा बल एवं वर्ण का ह्रास करने वाला माना है।

मन्द—सुश्रुत (सू० ४६/५२२) के अनुसार जो द्रव्य शरीर में जाकर अपनी यात्रा (क्रिया) मन्द गति से करे उसे मन्द कहते हैं। चरक (सू० २६/११) पृथ्वी और जल की अधिकता से द्रव्य में मन्दगुण की उत्पत्ति मानते हैं। मन्द द्रव्यों में दधि आदि की गणना की गई है।

तीक्ष्ण—सुश्रुत (सू० ४६/५१७) के अनुसार जो गुण शरीर के सम्पर्क में आने तथा सेवन करने पर दाह, पाक तथा स्राव उत्पन्न करता हो, उसे तीक्ष्ण कहते हैं। चरक (सू० १/६०) ने तीक्ष्ण को पित्त के गुण के रूप में स्वीकार किया है।

स्थिर—जिस गुण के कारण वायु और मल का स्तम्भन (निम्न मार्ग से निकलने से रोक) हो, उसे स्थिर कहते हैं।

सर—चरक (सू० १/६०) ने सर को पित्त का एक घटक स्वीकार किया है। सुश्रुत (सू० ४६/५२२) के अनुसार जो गुण गतिशील, हृदय आदि अवयवों के गतिरोध को दूर करने वाला, वायु एवं मल का प्रवर्तक (अधोमार्ग से गमन में सहायक) हो, उसे सर कहते हैं।

मृदु—सुश्रुत (सू० ४६/५२१) के अनुसार जिसके द्वारा शरीर में सुकुमारता, मृदुता या कोमलता उत्पन्न हो, उसे मृदु कहते हैं।

कठिन—चरक (सू० २६/११) के अनुसार जिस गुण के कारण कठोरता, कड़ापन एवं दृढ़ता उत्पन्न हो, उसे कठिन कहते हैं।

पिच्छिल—सुश्रुत (सू० ४६/५१६) के अनुसार जिस गुण के कारण द्रव्य जीवनीय (जीवन बढ़ाने वाला), बल्य (बलवर्धक), टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाला, कफवर्धक तथा गुरुता उत्पन्न करने वाला हो, उसे पिच्छिल कहते हैं। चरक (सू० १/६१) ने पिच्छिल गुण को श्लेष्मा का एक घटक माना है।

विशद—चरक (सू० १/४९) ने विशद गुण को वायु का एक घटक माना है। सुश्रुत (सू० ४६/५१६) के अनुसार जो शरीरगत क्लेद का शोषणकर निर्मलता एवं व्रणों का रोपण करता हो, उसे विशद कहते हैं।

श्लक्ष्ण—सुश्रुत (सू० ४६/५२०) ने श्लक्ष्ण को पिच्छिल गुण के समान माना है अर्थात् जो बल, कफ तथा जीवनीय शक्ति को बढ़ाता है, उसे श्लक्ष्ण कहते हैं। दोनों में अन्तर केवल यह है कि पिच्छिल द्रव्य स्निग्ध होता है, जबकि श्लक्ष्ण

द्रव्य (लेप किए हुए मणि, काष्ठ आदि के समान) स्नेह से रहित एवं कठोर होते हुए भी चिकना होता है।

खर या कर्कश—सामान्यत: खर का अर्थ खुरदरा या रूखा होता है। सुश्रुत (सू० ४६/५२०) ने 'कर्कशो विशदो यथा' अर्थात् कर्कश (खर) को विशद गुण के समान माना है। दोनों में यही भेद है कि विशद व्रण का रोपण करता है, जबकि खर व्रण का लेखन (छीलना) करने वाला है। चरक (सू० १/५९) ने खर को वायु का एक घटक माना है।

स्थूल—सुश्रुत (सू० ४६/५२०) के अनुसार जो शरीर में पहुँच कर बन्धकारक अर्थात् उपचय करने वाला हो, उसे स्थूल कहते हैं।

सूक्ष्म—सुश्रुत (सू० ४६/५२०) के अनुसार जिस गुण के कारण द्रव्य शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्रोतों में भी आसानी से प्रविष्ट हो उसे सूक्ष्म कहते हैं। चरक ने सूक्ष्म को वायु का घटक माना है (सू० १/५९)।

सान्द्र (शुष्क)—सुश्रुत (सू० ४६/५२०) के अनुसार जिस गुण के कारण शरीर में स्थूलता, धातुओं में संघात एवं दृढ़ता उत्पन्न होती है, उसे सान्द्र कहते हैं। चरक (सू० २६/११) ने सान्द्रगुणबहुल द्रव्यों को पार्थिव माना है।

द्रव—चरक (सू० १/६०) ने इसे पित्त का एक घटक माना है। सुश्रुत (सू० ४६/५४८) के अनुसार जिस गुण के कारण द्रव्य शरीर में आर्द्रता उत्पन्न करे और सर्वत्र व्याप्त होने की प्रवृत्ति रखे, उसे द्रव कहते हैं।

आयुर्वेद में पंचमहाभूत एवम् आत्मा के समुदाय को पुरुष की संज्ञा दी गई है। जीवात्मा में अनुभूत होने वाले गुणों को अध्यात्म गुण कहा गया है। इनकी संख्या छ: है, जो इस प्रकार है–

बुद्धि—चरक (शा० १/७२) एवं सुश्रुत (शा० १/१७)–दोनों ने बुद्धि को आत्मा का गुण माना है, जिससे प्रत्येक पदार्थ का यथावत् ज्ञान हो, उसे बुद्धि कहते हैं। चरक के व्याख्याकार चक्रपाणि (सू० १/४९) बुद्धि के अन्तर्गत चेतना, धृति (धैर्य), स्मृति, अहंकार आदि का ग्रहण करते हैं। डल्हण ने निश्चयात्मक ज्ञान को बुद्धि माना है (सु०शा० १/१८)।

इच्छा—चरक (शा० १/७२) एवं सुश्रुत (शा० १/१७)–दोनों संहिताओं में आत्मा के गुण के रूप में इच्छा को स्वीकार किया गया है। जहाँ किसी विषय में अनुरक्ति जागृत हो या किसी प्रकार की अभिलाषा हो, तो उसे इच्छा कहते हैं।

द्वेष—चरक (शा० १/७२) एवं सुश्रुत (शा० १/१७) के अनुसार इच्छा से प्रतिकूल यह भी आत्मा का एक गुण है। डल्हण (सु०शा० १/१८) के अनुसार जिसके प्रति प्रीति न हो, उसे द्वेष कहते हैं (द्वेषोऽप्रीतिलक्षणः)।

सुख और दुःख—चरक (शा० १/७२) एवं सुश्रुत (शा० १/१७) ने सुख-दुःख को आत्मा का गुण माना है। डल्हण के अनुसार जिसमें आत्मा, मन एवं इन्द्रियार्थ के सन्निकर्ष से अनुकूल या इष्ट फल प्राप्त हो वह सुख है तथा इसके विपरीत दुःख है।

प्रयत्न—चरक (शा० १/७२) एवं सुश्रुत (शा० १/१७) ने प्रयत्न को भी आत्मा का गुण माना है। डल्हण के अनुसार जिसमें उत्साहपूर्वक काम करने की चेष्टा हो, उसे प्रयत्न कहते हैं (प्रयत्नः कार्यारंभेषूत्साहः। सु०शा० १/१८)।

चरक (सू० १/४९) ने परादि पद से अनेक गुणों का निर्देश कर सूत्रस्थान के २६वें अध्याय २९-३४) में प्रत्येक की विवेचना की है। चक्रपाणि (शा० ६/१०) ने परादिगुणों को शरीरधातुगुण कहा है।

परत्व-अपरत्व—'तच्च परत्वं प्रधानत्वम्' अर्थात् परत्व का अर्थ प्रधानता है। एक ही प्रकार के असंख्य पदार्थों में जो उत्कृष्ट या प्रमुख होता है, उसे पर या श्रेष्ठ कहते हैं। परत्व गुण से विपरीत को अपरत्व कहते हैं। चक्रपाणि[६] के अनुसार 'अपरत्वम् अप्रधानम्' अर्थात् जो अप्रधान अथवा एक की अपेक्षा हीन या निकृष्ट हो, उसे अपरत्व कहते हैं। किन्तु योगीन्द्रनाथ सेन[७] के अनुसार आयुर्वेद में इसका अर्थ उपयोगिता की दृष्टि से ग्रहण करना चाहिए। उपयोगिता की दृष्टि से जो सन्निकृष्ट (समीपवर्ती) हो, वह पर कहा जाता है एवं उपयोगिता की दृष्टि से जो दूर (अपश्यकर) हो, उसे अपर कहा जाता है।

युक्ति—चरक (सू० २६/३६) के अनुसार दोष आदि का विचार कर औषध की समीचीन कल्पना (योजना) को युक्ति कहते हैं।

संख्या—चरक (सू० २६/३२) ने संख्या का अर्थ गिनती या गणना किया है। चक्रपाणि के अनुसार इस गणना का व्यवहार एक-दो-तीन आदि संख्याओं के आधार पर होता है।

संयोग—चरक (वि० १/२७, सू० २६/३२) के अनुसार दो या दो से अधिक द्रव्यों का परस्पर मिलना संयोग कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है- द्वन्द्वकर्मज, सर्वकर्मज एवम् एककर्मज।

विभाग—चरक (सू० २६/३३) ने द्रव्यों के विभाजन एवं संयोग के नाश को विभाग कहा है। अर्थात् किसी संयुक्त द्रव्यसमूह से द्रव्यों को पृथक्- पृथक् करना

(भागशः) विभाग कहलाता है। इसे भी तीन प्रकार का माना गया है–द्वन्द्वकर्मज, सर्वकर्मज एवम् एककर्मज।

पृथक्त्व—चरक (सू० २६/३३) के अनुसार एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से अलग करने वाले गुण को पृथक्त्व कहते हैं।

परिमाण—'परिमाणं पुनर्मानम्....' अर्थात् जो माप, तोल आदि मान के व्यवहार का कारणभूत गुण है, उसे परिमाण कहते हैं।

संस्कार—चरक (सू० २६/३४) के अनुसार जिस गुण के द्वारा द्रव्यों के स्वाभाविक गुण में परिवर्तन लाया जाता है, उसे संस्कार कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि औषध या आहार तैयार करने में धोना, कूटना आदि प्रक्रियाओं के द्वारा द्रव्य में जो अन्य गुण की उत्पत्ति होती है, उसे करण या संस्कार कहते हैं (च०वि० १/२६)।

अभ्यास—चरक (सू० २६/३४) के अनुसार किसी द्रव्य का निरन्तर सेवन करना अभ्यास कहलाता है। इसी को शीलन या सततक्रिया भी कहते हैं। सुश्रुत ने वीर्यसंज्ञक आठ गुणों का उल्लेख किया है। ये आठ गुण शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल और विशद हैं। सूत्रस्थान (४६/५१८-५२८) में सुश्रुत ने गुणों की संख्या तो बीस ही बतायी है परन्तु विवरण बाइस का प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है–शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, पिच्छिल, विशद, तीक्ष्ण, मृदु, गुरु, लघु, द्रव, सान्द्र, श्लक्ष्ण, कर्कश, सुगन्ध, दुर्गन्ध, सर, मन्द, व्यवायी, विकासी, आशुकारी तथा सूक्ष्म।

वैशेषिक दर्शन में गुण का स्वरूप

वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'गुण' सात पदार्थों में से एक है। कणाद (१/१/१६) ने गुण की परिभाषा इस प्रकार दी है–'द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्।' अर्थात् गुण वह पदार्थ है, जो सदैव किसी द्रव्य पर आश्रित रहता है, एक गुण में और कोई अन्य गुण नहीं होता है। गुण कर्म से शून्य है। कर्म संयोग-विभाग का कारण होता है परन्तु गुण निष्क्रिय होने के कारण वस्तुओं के संयोग-विभाग का भी कारण नहीं है। इस प्रकार गुण के तीन प्रमुख लक्षण हैं–द्रव्य में आश्रित होना (द्रव्याश्रितत्व), गुणरहित होना (निर्गुणत्व) तथा क्रिया से हीन होना (निष्क्रियत्व)। वैशेषिक दर्शन के चौबीस गुण निम्नलिखित हैं—

रूप—वह गुण है, जिसका प्रत्यक्ष केवल चक्षु से होता है। यह मुख्य रूप से अग्नि तत्त्व का लक्षण है। वैसे पृथ्वी और जल में भी पाया जाता है। श्वेत, नील, पीत, हरित आदि अनेक प्रकार के रूप होते हैं।

रस—रसना नामक इन्द्रिय से जिस गुण का ग्रहण होता हैं, उसे रस कहते हैं। मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय एवं तिक्त, ये छः रस मुख्य माने गये हैं। यह जल एवं पृथ्वी में पाया जाता है।

गन्ध—यह पृथ्वी तत्त्व का गुण है, जिसका ज्ञान घ्राणेन्द्रिय से होता है। इसके सुगन्ध और दुर्गन्ध–दो भेद हो सकते हैं।

स्पर्श—इसका प्रत्यक्ष त्वचा से होता है। स्पर्श तीन प्रकार के होते हैं- शीत, उष्ण, अनुष्णशीत। यह वायु, पृथ्वी, जल और अग्नि तत्त्व में पाया जाता है।

संख्या—जिस गुण से एक, दो, तीन आदि शब्दों का व्यवहार किया जाता है, उसे संख्या कहते हैं।

परिमाण—वह गुण है जिसके कारण छोटे और बड़े का भेद दिखाई पड़ता है। इसके चार भेद माने गये हैं- अणु, महत्, दीर्घ और ह्रस्व।

पृथक्त्व—इसके द्वारा भिन्न-भिन्न वस्तुओं के स्वभाव में जो पृथक्ता होती है, उसका बोध होता है। इससे दोनों में जो वास्तविक पृथक्ता होती है, उसका ज्ञान होता है।

संयोग—दो पृथक् रहने वाले द्रव्यों के मिलने से जो सम्बन्ध होता है, उसे संयोग कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है–अन्यतर कर्मज, उभय कर्मज, संयोगजसंयोग।

विभाग—दो संयुक्त द्रव्यों का अलग हो जाना विभाग कहलाता है। अन्यतर कर्मज, उभय कर्मज एवं विभागज–ये तीन भेद होते हैं।

परत्व और अपरत्व—परत्व का अर्थ है दूर और अपरत्व का अर्थ है निकट या समीप। इनमें से प्रत्येक दो प्रकार के होते हैं- कालिक और दैशिक।

बुद्धि—वस्तुओं की चेतना को बुद्धि (ज्ञान) कहा गया है। ईश्वर में बुद्धि नित्य है। जीवात्माओं में बुद्धि अनित्य है।

सुख-दुःख—अनुकूल वेदन को सुख या आनन्द कहते हैं। यह अतीत विषयों की स्मृति से और आगामी सुखों के संकल्प से उत्पन्न होता है। प्रतिकूल वेदन को दुःख कहा गया है। इष्ट का वियोग और अनिष्ट का प्राप्त होना ही इसका कारण होता है।

इच्छा—किसी वस्तु की कामना को इच्छा कहते हैं।

द्वेष—हृदय में किसी से जलन होना द्वेष है। क्रोध, मोह आदि इसके भेद हैं।

प्रयत्न—आत्मा की चेष्टा को प्रयत्न कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है। प्रवृत्ति (किसी वस्तु को पाने का प्रयत्न), निवृत्ति (किसी वस्तु से बचने का प्रयत्न) एवं जीवनयोनिप्रयत्न अर्थात् प्राणधारण की क्रिया जैसे साँस लेना आदि।

शब्द—यह मात्र आकाश का गुण है जिसे श्रोत्रेन्द्रिय ही ग्रहण करती है। ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक भेद से यह दो प्रकार का होता है।

गुरुत्व—वस्तुओं का वह गुण जिसके कारण वे नीचे की ओर गिरती हैं, गुरुत्व कहलाता है।

द्रवत्व—जिस गुण के कारण कोई वस्तु बहती है, उसे द्रवत्व कहते हैं। इसके दो भेद हैं। सांसिद्धिक अर्थात् स्वाभाविक (जैसे जल में) तथा नैमित्तिक (अग्नि का संयोग पाकर घी का पिघलना)।

स्नेह—इसका अर्थ है चिकनापन। इस गुण के कारण चूर्णादि के विभिन्न कण आपस में मिलकर पिण्डाकार हो जाते हैं। यह जल में मुख्यतया पाया जाता है।

संस्कार—संस्कार तीन प्रकार के माने गये हैं–वेग, भावना और स्थितिस्थापकत्व। वेग नामक संस्कार पृथ्वी, जल, वायु, तेज एवं मन नामक द्रव्यों में रहता है तथा उसके कारण इन द्रव्यों में क्रिया की उत्पत्ति होती है। भावना नामक संस्कार की स्थिति केवल आत्मा में होती है। यही अनेक प्रकार की वासनाओं का कारण होता है। इसके कारण किसी विषय की स्मृति होती है। तीसरा स्थितिस्थापकत्व है, जिसके कारण स्थान से हटे हुए अवयव अपनी पूर्व अवस्था में आ जाते हैं।

धर्म और अधर्म—श्रुति-स्मृति में बतलाये गये कर्मों को करने से धर्म तथा निषिद्ध कर्मों को करने से अधर्म की प्राप्ति होती है। जीवात्मा धर्म के कारण सुख और अधर्म के कारण दु:ख का भोग करती है।

वैशेषिक दर्शन एवं आयुर्वेदोक्त गुणों का साधर्म्य एवं वैधर्म्य

साधर्म्य -

- सभी गुण द्रव्यों के आश्रय में रहते हैं।
- सभी गुण अगुणवान् होते हैं, क्योंकि गुण का गुण नहीं हो सकता है।
- सभी गुण क्रिया से हीन अर्थात् निष्क्रिय होते हैं।
- सभी गुणों में गुणत्व पाया जाता है।

वैधर्म्य -

• चरकसंहिता में गुणों की संख्या ४१ तथा सुश्रुत में २२ मानी गई है, जबकि वैशेषिक दर्शन ने २४ मानी है। आयुर्वेदीय संहिताओं में उन गुणों को और जोड़ लिया गया जो चिकित्सा की दृष्टि से अनिवार्य प्रतीत हुए जैसे युक्ति और अभ्यास। युक्ति का अर्थ है- दोष आदि का विचार कर प्रकृति, काल आदि को ध्यान में रखते हुए की गई औषध की योजना। चिकित्साशास्त्र में युक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संसार के सभी द्रव्य औषध कहे गये हैं किन्तु उनका औषधत्व तभी चरितार्थ होता है जब उनकी योजना सम्यक् रूप से हुई हो। इसी प्रकार अभ्यास का अर्थ है 'किसी भी भाव, पदार्थ, औषधि या व्यवहार का बार-बार सेवन करना' इस गुण का चिकित्साशास्त्र में महत्त्वपूर्ण विनियोग है। किसी भी औषध का जब तक सतत (निरन्तर) सेवन न किया जाय तब तक आरोग्य लाभ नहीं हो सकता। इसी प्रकार व्यायाम आदि सतत क्रियाओं के द्वारा लाभ होता है।

• वैशेषिक दर्शन में द्रव्य और गुण सापेक्ष विषय हैं। द्रव्य के बिना गुण का अस्तित्व नहीं है और गुण के बिना द्रव्य का कोई अर्थ नहीं रहता है। द्रव्य और गुण सदा एक साथ रहते हैं। यहाँ गुणों के वर्गीकरण का आधार पूर्णतया दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक है, जबकि आयुर्वेद में चिकित्साशास्त्रीय दृष्टिकोण को प्रधानता दी गई है। यहाँ तक कि चरक ने अपनी सूची में वैशेषिक के जिन गुणों को स्थान दिया भी है, उन्हें प्राय: उसी अर्थ में नहीं लिया है जिस अर्थ में वे वैशेषिक दर्शन में लिए गए हैं। उदाहरण के लिए आयुर्वेद में संस्कार को औषधि या आहार तैयार करने में धोना, कूटना आदि अनेक प्रकार की क्रियाओं द्वारा द्रव्यों के गुणों में परिवर्तन उत्पन्न करने के अर्थ में लिया गया है।[८]

• वैशेषिक दर्शन के धर्म और अधर्म को आयुर्वेदीय गुणों की सूची में स्थान नहीं दिया गया है।

• सुश्रुतोक्त व्यवायी, विकासी, सुगन्ध, दुर्गन्ध और आशु गुण भी चरक में नहीं पाए जाते। प्रशस्तपाद ने सुगन्ध और दुर्गन्ध को गन्ध का ही भेद माना है।

• चरक एवं सुश्रुत में शीत और उष्ण को स्वतन्त्र गुण माना गया है, जबकि कणाद और प्रशस्तपाद ने शीत, उष्ण-इन दोनों को स्वतन्त्र गुण नहीं माना है।

• चरक एवं सुश्रुत ने मन्द गुण को माना है परन्तु वैशेषिक सूत्र या प्रशस्तपादभाष्य में कहीं भी मन्दगुण का उल्लेख नही है।

• चरक ने किसी द्रव्य के निरन्तर सेवन करने को अभ्यास कहा है। इसी को शीलन या सततक्रिया भी कहते हैं। सुश्रुत एवं वैशेषिक–दोनों ने कहीं भी अभ्यास का गुण रूप में वर्णन नहीं किया है।

वैशेषिक दर्शन एवं आयुर्वेदोक्त गुणों के साधर्म्य एवं वैधर्म्य के आधार पर कहा जा सकता है कि वैशेषिक दर्शन में गुणों के वर्गीकरण का आधार पूर्णतया दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक है जबकि आयुर्वेद में चिकित्साशास्त्रीय दृष्टिकोण को प्रधानता दी गई है। यहाँ तक कि चरक ने अपनी सूची में वैशेषिक के जिन गुणों को स्थान दिया भी है, उन्हें प्रायः उसी अर्थ में नहीं लिया है जिस अर्थ में वे वैशेषिक दर्शन में लिए गए हैं। आयुर्वेदीय संहिताओं में उन गुणों को और जोड़ लिया गया जो चिकित्सा की दृष्टि से अनिवार्य प्रतीत हुए।

सन्दर्भसूची

१. चरकसंहिता- सू० १/४९ पर योगीन्द्रनाथ सेन की चरकोपस्कार टीका।

२. सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रयः प्रोक्ता महागुणाः। अष्टांगसंग्रह सू० १/४१

३. रूप-रस-गन्ध-स्पर्शास्संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः। वैशेषिकसूत्र १/१/६

४. रूपरस....सप्तदश। च शब्द समुच्चिताश्च, गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारादृष्ट- (धर्माधर्म) शब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्विंशतिगुणाः। वैशेषिक दर्शन का प्रशस्तपादभाष्य, उद्देश्यप्रकरण।

५. तत्र य इमे अष्टौ गुणा वीर्यसंज्ञकाः शीतोष्ण-स्निग्ध-मृदु-तीक्ष्ण-पिच्छिल-विशदाः...। सुश्रुत सू० ४१/११; सू० ४०/१९

६. चरकसंहिता, सूत्रस्थान २६/३१, ३५ पर चक्रपाणि।

७. चरकसंहिता सू० २६/३१, ३५ पर योगीन्द्रनाथ सेन की चरकोपस्कारटीका।

८. चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन, ज्योतिर्मित्र आचार्य, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता, पृ० १८५-१८६

व्याकरणधर्मशास्त्रादिधुरीणो

महामहोपाध्याय आचार्यः सीतारामशास्त्री

राष्ट्रपतिसम्मानितः

श्रीपद्माभिरामशास्त्रिवेदमीमांसानुसन्धानकेन्द्रस्य

उपाध्यक्षः

आविर्भावः श्रावणकृष्णचतुर्थी 1979 वि.
(13/07/1922)

तिरोभावः भीष्मैकादशी 2073 वि.
(18/02/2016)

श्रीविश्वेश्वरपाणिपद्मडमरूप्रध्वानलीलोद्भवच्छ्रीमत्पाणिनिशास्त्रसिन्धुविहरल्लीलामरालोपमः।
यो वक्तिस्म तु पुत्रपौत्रपटलैर्गेहे सदा संस्कृतं सीतारामकृती स्मिताननधनो नासीत् स कस्य प्रियः।।
श्रीमच्छेखरशब्दरत्नप्रभृतिग्रन्थास्तु बाल्यात् समैरश्रूयन्ततरां पुरा किल मुदा व्याख्यास्वहो उद्धृताः।
एकाकी स्वयमेव दुर्लभतमान् सम्पाद्य तान् यत्नतः सीतारामकृती सदा स्वकृतिभी राराज्यतेस्यां क्षितौ।।
शब्दार्थपाथोनिधिमन्थनोत्थामृतप्रपादानविधानशीलः।
विश्वेश्वराङ्घ्रिस्थितदुण्ढिराजप्रभानुभावैर्जयतात् सुधीन्द्र ः।।

UGC CARE LISTED

ISSN 2229-3388

अनुसन्धानवल्लरी

ज्ञानभूमिसमुद्भूता शास्त्रकल्पतरुस्थिता ।
पलाशैः प्रतिभैर्भव्या सानुसन्धानवल्लरी ॥

श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिवेदमीमांसानुसन्धानकेन्द्रम्
वाराणसी
चतुर्दशाङ्कः

अनुसन्धानवल्लरी
(मूल्याङ्कित-शोधपत्रिका)
Anusandhanvallari
(Refereed and Peer-reviewed Research Journal)
ISSN : 2229-3388
UGC CARE Listed

प्रकाशक:
श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिवेदमीमांसानुसन्धानकेन्द्रम्
बी. ४/७-ए, हनुमानघाट, वाराणसी-२२१००१
e-mail : psvmkendra@gmail.com

चतुर्दशाङ्कः (आचार्यमणिलालशर्मोपाध्याय-स्मृत्यर्पिताङ्कः)
प्रकाशनवर्षम् : वि.सं. २०७७ (२०२० ई.)
मूल्यम् : पञ्चाशदधिकैकशतं रूप्यकाणि

निर्णायकमण्डलम्
प्रो.सन्निधानं सुदर्शनशर्मा
कुलपतिः श्रीवेङ्कटेश्वरवेदविश्वविद्यालयस्य, तिरुपतिः।
प्रो.युगलकिशोरमिश्रः
पूर्वकुलपतिः जगद्गुरुरामानन्दाचार्यराजस्थानसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, जयपुरम्।
प्रो.दीपककुमारशर्मा
कुलपतिः कुमारभास्करवर्मा-संस्कृतप्राच्यविद्याविश्वविद्यालयस्य, नलबाडी (असम)।
प्रो.भीमसिंहः
प्राक्तनसङ्कायप्रमुखः संस्कृतविभागाध्यक्षश्च कुरुक्षेत्रविश्वविद्यालयस्य, कुरुक्षेत्रम्।
प्रो.देवेन्द्रनाथपाण्डेयः
पूर्वसङ्कायाध्यक्षः श्रीसोमनाथसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य, वेरावल (गुजरात)।
प्रो.रवीन्द्रनाथभट्टाचार्यः
संस्कृतविभागाध्यक्षः कलकत्ताविश्वविद्यालयस्य, कोलकाता।
सम्पादकीयसङ्कल्पना
डॉ.चन्द्रकान्ता राय
संस्कृतविभागाध्यक्षा आर्यमहिलास्नातकोत्तरमहाविद्यालयस्य, वाराणसी।

मुद्रकः
श्रीजी प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

पृ.सं.

शुभाशंसा iii

प्रो. राजारामशुक्ल

कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

शुभकामना

स्व. श्री अशोक सिंघल जी iv

सम्पादकीयम् v

The Chronology of the Avesta : A Reassessment १

Prof. Ramesh Chandra Bhardwaj

शैक्षिक परिवेश एवम् उत्कर्ष की सम्भावनायें १४

नवीन शिक्षानीति के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. चन्द्रकान्ता राय

गुणत्रय-निरूपण २२

श्रीमद्भगवद्गीता एवम् उपेन्द्रविज्ञानदर्शन के सन्दर्भ में

डॉ. मंजू कुमारी

वैश्विक आपदा के निवारण की दिशा में भारतीय चिन्तनपरम्परा ३१

डॉ. वन्दना पाण्डेय

पौराणिक साहित्य में वालखिल्य ऋषि ३९

डॉ. शिल्पा सिंह

संस्कृतसाहित्य में श्रीराधातत्त्व ४९

कविता श्रीवास्तव

उपजीव्य काव्यों में वर्णित राष्ट्रधर्म ५७

अमृता मिश्रा

ग्रन्थ-समीक्षा : वैदिक एवं पौराणिक विचार-दर्शन ६२

डॉ. मंजू कुमारी

ग्रन्थमाला

अथर्ववेदीयं कौशिकगृह्यसूत्रम् (षष्ठसप्तमाष्टमाध्यायभाष्यम्) १-१०८

प्रो. श्रीकिशोरमिश्र:

गुणत्रय-निरूपण

श्रीमद्भगवद्गीता एवम् उपेन्द्रविज्ञानदर्शन के सन्दर्भ में

डॉ. मंजू कुमारी*

❋ ❋ ❋

संस्कृतवाङ्मय में 'गुण' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त है। न्यायकोश के अनुसार–श्लेषादयो दश माधुर्यौजः प्रसादा इति त्रयो वा गुणा इत्यालङ्कारिका, यागादौ आधेयविशेषो दध्यादिः गुण इति मीमांसकाः रूपादयश्चतुर्विंशतिर्गुणाः इति वैशेषिका नैयायिकाः ज्ञानानन्दादयोऽपि गुणा इति वेदान्तिनः, अकार्पण्यस्पृहत्वादय इति धर्मज्ञाः, देशकालज्ञतादयश्चतुर्दश गुणा इति पौराणिकाः, उष्णाद्यष्टविधं वीर्यं गुण इति भिषजः, वस्तुधर्मो गुण इति वैयाकरणादयः, आवृत्तिरित तान्त्रिकाः, त्याग इति काव्यज्ञाः, सत्त्वम् रजः तमश्चैते द्रव्यात्मकाः त्रयो गुणा इति सांख्याः।

सांख्यसम्मत ये तीनों गुण-सत्त्व, रजस् और तमस् हैं जिनकी साम्यावस्था को 'प्रकृति' कहा गया है–**सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः**।[१] गुणों से समन्वित प्रकृति के ये द्रव्यात्मक गुण इसलिए गुण कहलाते हैं क्योंकि ये रस्सी के तीनों गुणों के समान आपस में मिलकर पुरुष को बाँधते हैं। प्रकृति के उद्देश्य के साधन में गौणरूप से सहायक होने के कारण भी ये गुण कहलाते हैं।[२] वाग्भट्ट ने इन गुणों को महागुण के अभिधान से अभिहित किया है–**सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रयः प्रोक्ता महागुणाः**।[३] जगत् के सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों में इन तीनों गुणों का अस्तित्व होता है। श्रीगौड़पाद ने अपने भाष्य में कहा है–त्रिगुणं व्यक्तमव्यक्तमपि त्रिगुणं यस्यैतन्महदादिकार्यं त्रिगुणम्। इह यदात्मकं कारणं तदात्मकं कार्यमिति। यथा–कृष्णतन्तुकृतः कृष्ण एव पटो भवति।[४] अतः कारणस्वरूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति के कार्यसमुदाय की त्रिगुणात्मकता सिद्ध होती है।

सांख्यदर्शनप्रोक्त इन त्रिविधि गुणों का विवेचन श्रीमद्भगवद्गीता में भी सम्प्राप्त होता है।

'उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम्' पण्डित उपेन्द्रदत्तशर्मा द्वारा प्रणीत वेदान्तदर्शन का एक ग्रन्थ है। १८५६ ई० में विरचित इस मौलिक ग्रन्थ में पण्डित शर्मा ने अपनी प्रतिभा से दर्शनशास्त्र के लगभग सभी विषयों का समावेश करके सूत्ररूप में प्रस्तुत

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर, वसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

ISSN 2229-3388

किया है। स्वचिन्तन से लब्ध ज्ञान-नवनीत को ग्रन्थकार ने संक्षिप्त रूप में केवल १६५ सूत्रों में उपनिबद्ध किया है। विषय के गाम्भीर्य में इन सूत्रों में ब्रह्मसूत्र के सूत्रों जैसी गम्भीरता का आभास होता है। सूत्र एवं भाष्य-स्वरूपात्मक ग्रन्थ में सूत्रों के अर्थों को सुगमतया ग्रन्थकार ने भाष्य में अभिव्यक्त किया है। ग्रन्थ चार अधिकारों में विभक्त है—(क) उत्तमाधिकार, (ख) मध्यमाधिकार, (ग) कनिष्ठाधिकार तथा (घ) आत्मलक्षणम्।

इस ग्रन्थ पर श्रीमद्भगवद्गीता का प्रभूत प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रकृत शोधपत्र में 'श्रीमद्भगवद्गीता' और 'उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम्' में वर्णित त्रिविध गुणों के साम्य-वैषम्य का विवेचन करते हुए उनका तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

गुणत्रय

श्रीमद्भगवद्गीता में गुणत्रय को प्रकृति के कार्य के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ।।[५]

आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में लिखा है–**सत्त्वं रजः तम इति एवं नामानः गुणा इति पारिभाषिकः शब्दो न रूपादिवद्द्रव्याश्रिताः**।[६] अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस् नामक ये गुणत्रय हैं। ये रूप, रस इत्यादि के समान द्रव्याश्रित नहीं होते हैं। इन गुणों में प्रथम स्थान सत्त्व को प्राप्त है। इस गुण की सत्ता या विद्यमानता रजोगुण के पूर्व मानी गयी है–**रजसः पुरस्ताद्वर्तमानः सात्त्विकः**।[७]

महर्षि मनु ने सत्त्व को लघु, प्रकाशक, प्रीतिसंयुक्त, क्लेशरहित और प्रकाशमान[८] माना है तो महाभारतकार ने इसे सुखानुभूति कराने वाला तथा मन में प्रीति के भाव का जनक बताया है।[९] इसके अतिरिक्त महर्षि व्यास ने सत्त्व को वैकारिक हेतु, मुख्य धर्म[१०] तथा सर्वभूतप्रकाशलघुता एवं श्रद्धा[११] के रूप में वर्णित किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस आद्य गुण के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनायम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ।।[१२]

सत्त्व गुण स्फटिक मणि के समान[१३] निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला और अनामय अर्थात् निर्विकार या उपद्रवरहित होता है। सांख्यदर्शन में भी गुणत्रय-वर्णनक्रम में सत्त्व का लक्षण निरूपित करते हुए श्रीमदीश्वरकृष्ण ने कहा है–**सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टम्**।[१४] अपनी लघुता के कारण सत्त्वगुण वस्तुओं के

ऊर्ध्वगमन में कारण बनता है। सत्त्व के कारण ही अग्नि की ज्वालाएँ ऊपर की ओर उठती हैं। पवन की गति और इन्द्रियों की द्रुतता का कारण भी यही लघुता है।[१५]

उपेन्द्रविज्ञानदर्शन के मध्यमाधिकार में गुणों के स्वरूपादि का वर्णन समुपलब्ध होता है। ग्रन्थकार ने सत्त्व का स्वरूप सूत्रबद्ध किया है–**येन विज्ञानं वर्द्धते तत्सत्त्वम्।**[१६] पुनः भाष्य में सूत्रार्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है—

येन विस्पष्टं ज्ञानं यद् यथा वर्त्तते तस्य तथैव ग्रहणं कर्त्तव्यमिति निरन्तर-दृढाभ्यासेनोत्तरोत्तरं वर्द्धते तत् सत्त्वम्[१७]**।**

इस प्रकार यहाँ सत्त्व को विशिष्ट ज्ञान का कारण माना गया है जिसकी निरन्तर अभिवृद्धि अभ्यास द्वारा होती है। इसके प्रभाव से विषय के सत्स्वरूप का ज्ञान होता है, इसलिए सत्त्व की वृद्धि करनी चाहिए।[१८] क्योंकि–**'अस्तीति सत् सतो भावः सत्त्वम्। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां विज्ञानसमृद्ध्या यद् यादृशं परिचीयते तत् सत्त्वम्। तद्विषयकं विज्ञानं विज्ञानान्तरेण कदाऽपि बाधितुं न शक्यते। यद् विस्पष्टं प्रतिभासते तत् सत्।'**[१९]

सत्त्व गुण की उपकारकता को प्रकाशित करते हुए वृत्ति में कहा गया है कि जिस प्रकार सत्य उपकार करता है उसी प्रकार सत्त्व भी उपकार करता है और रजोगुण तथा तमोगुण असत्य के समान अपकारक होते हैं। वस्तुतः सत्त्व की उपकारकता के ग्रहण में भी ग्रन्थ पर पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित होता है। श्रीमद्भागवतपुराण में भी वस्तु के ज्ञान में सत्त्वगुण को कारण माना गया है—

यदेतरो जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम्।
तदा सुखेन युज्यते धर्मज्ञानादिभिः पुमान्।।[२०]

गीता में 'सत्त्वं सुखे सञ्जयति'[२१] कथन द्वारा सत्त्व गुण के स्वाभाविक व्यापार को सांसारिक भोगों एवं चेष्टाओं से पृथक्, सात्त्विक सुख से सम्बद्ध करना अभीष्ट है। सांख्यकारिकाकार ने भी सत्त्व गुण को प्रीत्यात्मक[२२] माना है, जिससे ज्ञानादि का प्रकाश होता है। उपेन्द्रविज्ञानदर्शनकार ने सूत्र में–'सत्त्वेनोपशाम्यति प्रसीदति च' कहकर सत्त्व का कार्य निरूपित करने के पश्चात् वृत्ति में उसे स्पष्ट किया है–**बहिमुर्खतयैव दुःखमुत्पद्यत इति सत आत्मनोऽन्यथाभावनानिवर्त्तनेन सत्त्वेनाविपरीतभावेनोपशाम्यति स्फुरणमात्मभावं प्राप्नोति, न तु जीवभावम्। तथात्मसुखाविर्भावेन प्रसीदति। स्पृहानिवर्तनेन सन्तुष्यति च।**[२३]

अर्थात् सत्त्व के आविर्भाव से आत्मसुख प्राप्त होने से आनन्द की प्राप्ति के साथ इच्छाओं के निवर्तन से आत्मिक संतुष्टि भी प्राप्त होती है। अन्योन्याभिभववृत्ति[२४] वाले तीनों गुण आपस में मिलकर ही प्रवृत्त होते हैं—

सत्त्वं न केवलं क्वापि न रजो न तमस्तथा।
मिलिताश्च तदा सर्वे तेनान्योन्याश्रयाः स्मृताः ।।[२५]

यद्यपि संसार के समस्त कार्यों के जनक ये गुणत्रय स्त्री-पुरुष के समान आपस में मिलकर कार्य करते हैं[२६] किन्तु किसी एक गुण के अधिक बलवान होने पर अन्य दो गुण निर्बल हो जाते हैं। श्रीमद्भागवद्गीता के अनुसार—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।[२७]

सत्त्वगुण की अभिवृद्धि से शरीर के सभी द्वारों (सर्वद्वारेषु देहेस्मिन् प्रकाश उपजायते)[२८] अर्थात् इन्द्रियों और अन्तःकरण में प्रकाश उत्पन्न होता है। शरीर में चेतनता की अधिकता के साथ ही कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने वाली विवेकशक्ति भी उत्पन्न होती है।[२९] इतना ही नहीं-सत्त्वात् सञ्जायते ज्ञानम्[३०] अर्थात् उत्कर्ष को प्राप्त हुए सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है। फलस्वरूप प्रकाश सुख, शान्ति के साथ समस्त सात्त्विक भावों की उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार उपेन्द्रविज्ञानदर्शन में भी कथित है—

तीव्रोपासनया सा सत्त्वरजस्तमसामितरे शीघ्रमेवान्तर्दधति। अत्र प्रकृतिः पृथक्तया सत्त्वात्मिका प्रकृतिः राजसी प्रकृतिः तामसी प्रकृतिः इति रूपेण स्थित्वा अन्ये द्वे प्रकृती निगृह्णाति तथा च निग्रहणं कृत्वा पुनः आत्मनि आवृणोति।[३१]

सत्त्व की प्रबलता में रजोगुण और तमोगुण आच्छादित हो जाते हैं, रजोगुण प्रबल होने पर सत्त्व एवं तमस् तथा तमोगुण के प्रबल होने पर सत्त्व एवं रजोगुण आच्छादित हो जाते हैं।

महर्षि मनु के अनुसार सात्त्विक पुरुष वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, शौच, आत्मचिन्तनादि से युक्त होते हैं।[३२] सात्त्विक भाव से सम्पृक्त व्यक्ति शुद्ध भावों को ही देखता और उन्हीं का आश्रय लेता है। वह अत्यन्त निर्मल एवं कान्ति से युक्त होता है तथा उसमें श्रद्धा और विद्या की प्रधानता होती है।[३३]

उपेन्द्रविज्ञानदर्शन में प्रोक्त है कि सत्त्वगुण की प्रबलता से युक्त जीव विवेकज्ञान से युक्त होकर सात्त्विक कार्यों में प्रवृत्त होता है। सत्त्वगुण से सम्पृक्त व्यक्ति की इच्छाओं के साथ उसके समस्त कार्य भी सात्त्विक होते हैं। अपने कार्यों की सिद्धि के लिए वह सात्त्विक देवों की ही उपासना करता है—

तेषु विज्ञानवन्तो विवेकिन उपशान्ता विज्ञानविवेकविरागालयं दयालुवर्यमुपशान्तं त्रिनेत्रं चतुर्भुजं पञ्चवक्त्रं महेश्वरं स्वाभीष्टप्रदत्वेनोपासते।[३४]

सत्त्व के द्वारा जीव पूर्णविज्ञान को प्राप्त करते हैं—**रजस्तमोऽभिभूत्या सत्त्वसमृद्ध्या पूर्णविज्ञानं सम्पद्यते।**[३५]

गुणों में द्वितीय स्थान रजोगुण को प्राप्त है। वस्तुतः इस रजोगुण का स्वरूप सांख्यकारिकाकार ने अत्यन्त संक्षिप्ततया और स्पष्टतया अभिव्यक्त करते हुए कहा है–**उपष्टम्भकं चलं च रजः।**[३६] यह चञ्चल और उपष्टम्भक अर्थात् उत्तेजक गुण होता है। यह क्रिया का प्रवर्तक होता है। स्वयं चल होने के साथ यह दूसरे पदार्थों को भी गतिमान बनाता है। इस गुण के कारण पवन में प्रवाह होता है तथा सभी इन्द्रियाँ स्व-स्व विषयों की ओर दौड़ती हैं। सत्त्व एवं रजस् स्वयं प्रवृत्तिशील नहीं होते हैं। रजोगुण के कारण ही सत्त्व अपने प्रकाशनकार्य तथा तमस् नियमनकार्य में प्रवृत्त होते हैं।[३७] रजोगुण अप्रीत्यात्मक होने से दुःखस्वरूप है[३८] तथा इसके कारण मन में दुःख से युक्त अप्रीत्यात्मक भावों का जागरण होता है।[३९] श्रीमद्भगवद्गीता में रजोगुण-निरूपण क्रम में उक्त है—

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।[४०]

आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में इसे स्पष्ट किया है कि अप्राप्त वस्तु की अभिलाषा का नाम तृष्णा है और प्राप्त विषयों में मन के प्रीतिरूप स्नेह का नाम आसक्ति है। गेरू आदि रंगों के समान पुरुष को विषयों के साथ आसक्त करके तद्रूप करने वाला होने से इसे रागरूप में समझना चाहिए।'' इस प्रकार इस गुण के कारण न केवल रागरूप तृष्णा और आसक्ति की उत्पत्ति होती है अपितु रजोगुण कर्म में प्रवृत्त भी करता है।

महाभारत में इस गुण को सृष्टि की उत्पत्ति का कारण तथा दृश्यमान जगत् को उसका स्वरूप एवं उत्पत्ति या प्रवृत्ति को उसका लक्षण बताया गया है—

प्रकृत्यात्मकमेवाह रजः पर्यायकारकम्।
प्रवृत्तं सर्वभूतेषु दृश्यमुत्पत्तिलक्षणम्।।[४१]

गीता में यह भी प्रतिपादित है कि रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति, स्वार्थबुद्धि से कर्मों का सकामभाव से आरम्भ, अशान्ति और विषयभोगों की लालसा–ये सभी उत्पन्न होते हैं—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।[४२]

आचार्य शंकर ने परद्रव्य को प्राप्त करने की इच्छा को लोभ, सामान्यभाव से सांसारिक चेष्टा और कर्मों के आरम्भ को प्रवृत्ति तथा सामान्यभाव से सभी वस्तुओं में तृष्णा को स्पृहा माना है। गीता के अनुसार रजोगुण की वृद्धि के समय मरने पर कर्मों में आसक्त हुए मानवों की उत्पत्ति होती है। पुनः 'मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः'[४२] कहकर गीता ने राजस पुरुष के मनुष्य योनि में उत्पन्न होने की बात प्रतिपादित की है। तृतीय गुण तमस् है। सांख्यकारिका में 'गुरु वरणकमेव तमः' अर्थात् तमो गुण को गुरु एवं आवरक कहा गया है। क्योंकि इस गुण की अधिकता से शरीर एवं इन्द्रियों में भारीपन होने के साथ ही ज्ञान में रुकावट हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसके स्वरूप को व्यक्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है—

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।[४३]

अर्थात् सभी शरीरधारी जीवों के अन्तःकरण में मोह या अविवेक को उत्पन्न करने वाला गुण तमोगुण है। यह गुण जीवों को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है। सत्त्वगुण से उत्पन्न हुए विवेकज्ञान को अपने आवरणात्मक स्वभाव से आच्छादित करके फिर प्रमाद में नियुक्त करता है। प्राप्त कर्त्तव्य को न करने का नाम प्रमाद है-'**प्रमादो नाम प्राप्तकर्तव्याकरणम्।**'[४४] इस गुण की अभिवृद्धि की दशा में जीव के अन्तःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश अर्थात् अविवेक, कर्त्तव्य कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद तथा मोह की उत्पत्ति होती है—

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।[४५]

इस तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य पशु, कीटादि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होकर अधोगति को प्राप्त होता है।

उपेन्द्रविज्ञानदर्शनकार ने रजोगुण एवं तमोगुण का लक्षण संक्षेप में एक ही सूत्र में किया है—

येन लोभो येन मोहस्ते रजस्तमसी।[४६]

जिससे लोभ की वृद्धि होती है, वह रजोगुण तथा जिससे मोह की अभिवृद्धि होती है, वह तमोगुण होता है। पुनः भाष्य में स्पष्ट करते हुए कहा है-**स्फुरणस्यैव चाञ्चल्यमहिम्ना विषयस्य प्रतीयमानचाञ्चल्येन यथावत् परिचयविरहे स्वभावसिद्ध्या बहिर्मुखतया दोषे तिरोहिते गुणे च प्रत्यायिते लोभो वर्द्धते।**

इस प्रकार चञ्चलता के कारण इस गुण के प्रभाव से वस्तु का यथावत् ज्ञान न होकर दोषों के तिरोहित होने और मात्र गुण की प्रतीति से लोभ का संवर्द्धन होता है तथा बहिर्मुखता भी बढ़ती है। रजस् और तमस् दोनों की समृद्धि से होने वाले परिणाम को भी ग्रन्थकार ने सूत्र में पिरोया है–**रजस्तमोभ्यामभिभूतः संसरति।**[४७] अर्थात् चञ्चलता और मलिनता से आक्रान्त जीव जन्म और मरण की परम्परा में भ्रमण करता रहता है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनों गुण जीवों पर क्या प्रभाव डालते हैं इसके निरूपणक्रम में ग्रन्थकार ने सूत्र में कहा है—

एवं जीवाः सत्त्वेन विज्ञानं रजसोद्योगं तमसा मोहं वर्द्धयन्तोमर-मनुजदनुजादिषूपजायन्ते।[४८]

सत्त्व से विज्ञान की अभिवृद्धि करते हुए जीव देवत्व को, रजोगुण से उद्योग को बढ़ाते हुए मनुष्यत्व को तथा तमोगुण से मोह को बढ़ाते हुए दनुजत्व को प्राप्त होते हैं। रजोगुण वाले जीव विविध विषयों के भोगरूप में मनुष्य शरीर को पाते हैं तथा तमोगुणी जीव ज्ञान एवं क्रियाशक्ति से रहित अजगरादि के रूप में उत्पन्न होते हैं। राजस जीवों की स्थिति का वर्णन करते हुए सूत्र में उक्त है—

अन्ये रजसा विज्ञानं विक्षिपन्तो विविधभोगानेव स्पृहयन्ति।[४९]

रजोगुणी विभिन्न प्रकार के विषयों में आसक्त, विज्ञान के प्रति अस्थिर होता हुआ आनन्द की उपलब्धि के अभाव में विषयभोग हेतु सदा उसी तरह लालायित रहता है जैसे कोई भूखा व्यक्ति भोजन के प्रति। ग्रन्थकार ने पुनः सूत्र में कहा है—

इतरे तमसा विज्ञानमभिभूय मुह्यन्तो रजसा तिर्यगादिषु संसरन्तस्तमस्समृद्ध्या स्थावरा अपि भवन्ति।[५०]

अर्थात् रजोगुण के प्रभाव से भोगलिप्सा से सम्पृक्त जीव विभिन्न तिर्यग् योनियों को प्राप्त होता हुआ जननमरण के चक्र में पड़ा रहता है। इसी प्रकार तमोगुण की समृद्धि से जीव स्थावर वृक्षादि के रूप में अधोगति को प्राप्त होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता एवं उपेन्द्रविज्ञानदर्शन में गुणत्रय का साम्य और वैषम्य

१. सत्त्वगुण के स्वरूप में 'प्रकाशकता' को श्रीमद्भगवद्गीता में ग्रहण किया गया है, किन्तु उपेन्द्रविज्ञानदर्शनकार ने प्रकाशकम् के स्थान पर 'विज्ञानम्' पद का प्रयोग करके भाष्य में और स्पष्टता से सत्त्व के स्वरूप को अभिव्यक्त किया है।

२. दोनों ही ग्रन्थों में सत्त्वगुण से ज्ञान की उपलब्धि समानतया स्वीकृत है।

३. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन में गीता की अपेक्षा सत्त्वगुण के कार्य को स्पष्टतर रूप में व्याख्यायित करते हुए अभ्यास द्वारा उसकी निरन्तर अभिवृद्धि भी स्वीकार की गयी है।

४. दोनों ग्रन्थों में गुणत्रय में से किसी एक के प्रबल होने पर अन्य दो गुणों के आच्छादित होने का कथन है।

५. दोनों ग्रन्थ रजोगुण से लोभादि और तमोगुण से मोह की विवृद्धि को मानते हैं।

६. दोनों ग्रन्थों में सत्त्वगुण की वृद्धि के समय मृत्यु होने पर ऊर्ध्वगति, रजोगुण के प्रवृद्धिकाल में मृत्यु से मध्यगति और तमोगुण के अभिवृद्धि-काल में मरण से अधोगति प्राप्ति को समानतया स्वीकारते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता एवम् उपेन्द्रविज्ञानदर्शन में गुणत्रय के साम्य एवं वैषम्य के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि पूर्ववर्ती ग्रन्थ का प्रभूत प्रभाव ग्रन्थ पर दृष्टिगोचर होता है तथापि पं. उपेन्द्रदत्तशर्मा ने अपनी प्रतिभा से सूत्रों में गुणत्रय के निरूपण के साथ भाष्य में विषय को उपस्थापित करने में अपनी असाधारण मेधा का परिचय दिया है।

सन्दर्भसूची

१. सांख्यसूत्र-१.६१
२. तत्त्वकौमुदी, मुसलगाँवकर, पृ. ३२१
३. अष्टाङ्गसंग्रह सूत्र-१.४१
४. सांख्यकारिका गौड़पादभाष्य-११
५. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.५
६. श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य-१४.५
७. तैतिरीयब्राह्मण-३.७.७.१३
८. मनुस्मृति-१२.२७
९. महा.शा.प. २१९.३०,३१
१०. महा.आश्व.प.-३९.९
११. महा.आश्व.प.-३९.१०
१२. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.६
१३. श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य-१४.६
१४. सांख्यकारिका-१३
१५-सांख्यतत्त्वकौमुदी-१३
१६. उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम्, मध्यमाधिकार-१४

१७. उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम्, मध्यमाधिकार-१४ भाष्य
१८. उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम् मध्यमाधिकार-१३
१९. उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम् मध्यमाधिकार-१३ भाष्य
२०. श्रीमद्भागवतपुराण-११.२५.१३
२१. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.९
२२. सांख्यकारिका-१२
२३. उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम्, मध्यमाधिकार १७ सूत्र भाष्य
२४. सांख्यकारिका-१२
२५. देवीभागवत-३.८.१४
२६. देवीभागवत-३.८.४९
२७. श्रीमद्भवद्गीता-१४.१०
२८. श्रीमद्भवद्गीता-१४.११
२९. श्रीमद्भवद्गीता शांकरभाष्य-१४.१७
३०. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.१७
३१. उपेन्द्रविज्ञानदर्शनम्, कनिष्ठाधिकार, ११ सूत्र एवं भाष्य।
३२. मनुस्मृति-१२.३१
३३. महाभारत, शान्तिपर्व-३१३.१७-२०
३४. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, कनिष्ठाधिकार, ६ सूत्र
३५. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, मध्यमाधिकार, ३८ सूत्र
३६. सांख्यकारिका-१३
३७. तत्त्वकौमुदी-१३
३८. सांख्यकारिका-१२
३९. महाभारत, शान्तिपर्व-१९४.३२
४०. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.७
४१. रजसो लोभ एव च-१४.१७
४२. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.१२
४३. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.८
४४. श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य-१४.९
४५. श्रीमद्भगवद्गीता-१४.१३
४६. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, मध्यमाधिकार-३६ सूत्र
४७. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, मध्यमाधिकार-४० सूत्र
४८. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, मध्यमाधिकार-४१ सूत्र
४९. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, मध्यमाधिकार-१५ सूत्र
५०. उपेन्द्रविज्ञानदर्शन, मध्यमाधिकार-१६ सूत्र

❖

वेदधर्मकर्मकाण्डादिशास्त्रदक्षः

आचार्यो मणिलालशर्माध्यायः

राष्ट्रपतिपुरस्कृतः

श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिवेदमीमांसानुसन्धानकेन्द्रस्य

सहायकसचिवः

आविर्भावः १५/०९/१९४९ तिरोभावः ७/७/२०१९

गुरुचरणेष्वनुरक्तौ भक्तावपि वेदशास्त्रदेवानाम् ।
को नु समत्वे शक्तोऽत्र मणिलालशर्मवर्याणाम् ।।
नेपालदेशात् शिवराजधानीमागत्य वेदे कृतभूरिसेवः ।
छात्रोपकारैकनिधिर्वरेण्यः केन्द्रोन्नतौ सन्मणिवद् विभाति ।।
मिश्रैर्गोपालचन्द्राभिधगुरुभिरनुगाह्यभावैः समृद्धो
वेदोद्याने शुकाभाध्ययनरतबटुव्रातवन्द्यो गुणाढ्यः ।
नानासंस्थासहायो बुधजनतिलकः स्मार्तकर्मप्रवीणः
शर्मोपाध्यायविज्ञो मणिरिव सुजनैर्धारितो धर्मदक्षः ।।